पांचवां अंक
जनवरी-मार्च 2016
ISSN- 2395-2873
सहचर...
पांडेय
सहचर

भोजपुरी कहावतों में नारी- अर्चना उपाध्याय

कहावतें मनुष्य के संपूर्ण जीवन के अनुभव तथा ज्ञान का समुच्चय होती हैं। मानव अनादिकाल से जो कुछ भी देखता-सुनता तथा अनुभव करता रहा है, उसे ही उसने सूत्र-शैली में व्यक्त किया है। ये ही सूत्र वास्तव में कहावत हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही सामान्य जन-जीवन में कहावतों की परंपरा विकसित हुई होगी। लोक-साहित्य की अन्य विधओं की ही भाँति इसका जन्म लिखित साहित्य के पूर्व हो चुका था। सभ्यता के विकास के साथ ही लोक-जीवन के मध्य कहावतों का भी प्रचलन हुआ होगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मानव ने अपने जीवन में जो कुछ भी देखा-सुना या अनुभव किया होगा, उसे सूत्रों में पिरोकर कहावतों के रूप में व्यक्त किया होगा। डॉ.. वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार उपनिषद-युग के पश्चात सूत्र-शैली का जन्म हुआ। अतः, इसी सूत्र-काल में कहावतों का उत्कर्ष विशेष रूप से हुआ होगा। चूँकि ये सूत्र-वाक्य; कहावतें जीवन के सार्वभौम सत्य, सुख-दुःख, जीवन-मरण, आचार-विचार, रीति-नीति, खान-पान, शकुन-अपशकुन, खेती-बारी, आहार-विहार, पशु-पक्षी, जीव-जंतु आदि सभी से संबंधित हैं, इसलिए ये सामान्य अथवा सर्वमान्य उक्तियों के रूप में प्रचलित हो गए। ये उक्तियाँ यथावसर परस्पर कही-सुनी जाती रहीं, इसलिए इन्हें लोक-जीवन में 'कहावत' नाम से अभिहित किया गया।

समाज में जो कुछ भी कार्य-व्यापार घटित होता है, जो कुछ भी सभी लोग समान रूप से महसूस करते हैं, जो कुछ सभी लोगों के लिए सार्वभौम सत्य होता है, वही किसी एक व्यक्ति के मुख से सहज स्वाभाविक तरीके से सूत्र-रूप में अभिव्यक्त हो जाता है, जिसे सुनकर हम चमत्कृत तथा प्रमुदित हो जाते हैं और जिसे यथावसर बार-बार कहते-सुनते रहते हैं। उस उक्ति में मनुष्य को स्वयं से ही जुड़े हुए किसी सार्वभौम अथवा सार्वजनीन समस्या का सार मुखरित हुआ मिलता है। इसलिए वह अनायास ही जन-समुदाय द्वारा अपना लिया जाता है। फलस्वरूप, वह उक्ति व्यक्ति-विशेष या काल-विशेष तक ही सीमित न रहकर, सार्वभौम, सार्वजनीन, तथा सार्वकालिक बन जाती है। उसे ही लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी कहते-सुनते चले जाते हैं। यही परंपरागत कही-सुनी जाने वाली उक्ति कहावत के नाम से जानी जाती है। ऐसी कोई भी उक्ति, जो अपने आप में चाहे कितनी भी महत्त्वपूर्ण अथवा प्रभावशाली क्यों न हो, यदि सामान्य जन-समुदाय द्वारा अपनायी नहीं जाती, तो वह कहावत के पद पर आसीन नहीं हो सकती है और, कोई भी उक्ति जन-समुदाय द्वारा तभी स्वीकृत होती है, जब वह उसे उपयोगी लगे, उसमें व्यक्ति की किसी अपनी समस्या का सार अभिव्यंजित हो। कहावत, चूँकि व्यक्ति-विशेष की उक्ति न रहकर जनसाधारण अथवा लोक की उक्ति बन जाती है, इसलिए उसके लिए लोकोक्ति ;लोक की उक्ति शब्द का भी प्रयोग होता है। लेकिन, लोकोक्ति और कहावत में सूक्ष्म अंतर है।

लोकोक्ति का अर्थ है- लोक की उक्ति। किसी भी सामान्य उक्ति को लोकोक्ति कहा जाता है, लेकिन कहावत लोक की सामान्य उक्ति न होकर एक विशेष प्रकार की सर्वग्राह्य उक्ति होती है। दूसरी तरफ लोकोक्ति सर्वग्राह्य होते हुए भी एक सामान्य उक्ति होती है। लोकोक्ति के अंतर्गत बच्चों के खेल की उक्तियाँ, मनोरंजन की उक्तियाँ, बुझौवल ;पहेलियाँद निरर्थक अथवा अभिप्राय-रहित, सार्थक अथवा सार-युक्त इत्यादि सभी प्रकार की उक्तियाँ आती हैं। कहावत एक सार्थक तथा साभिप्राय उक्ति होने के कारण लोकेाक्ति का ही एक रूप है, जिसमें आवश्यक रूप से कोई प्रयोजन होता है। अपने प्रकृत अथवा प्रत्यक्ष अर्थ के

अतिरिक्त इसका एक विशेष अर्थ अथवा अभिप्राय होता है। उपदेश, शिक्षा, ज्ञान, सूचना, आलोचना, स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, कृषि, व्यवसाय, विधि-निषेध, रीति-नीति, हास्य-व्यंग्य आदि कहावतों के विशेष अभिप्राय होते हैं।

स्पष्टतः कहावतें सदैव सार्थक तथा साभिप्राय होती हैं और उसमें गहरी तथा सीधी चोट करने की ऐसी क्षमता होती है, जो शास्त्रीय उपदेश-वाक्यों में भी संभव नहीं हैं। इसके विपरीत, लोकोक्तियाँ सार्थक अथवा निरर्थक दोनों ही होती हैं। व्यक्ति की उक्तियाँ तो कहावत और लोकोक्ति, दोनों ही हैं पर एक का सार्थक तथा साभिप्राय होना आवश्यक है, किंतु दूसरे के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है।

कहावत का महत्त्व किसी भी आप्त वाक्य से कम नहीं है। कहावती-जगत भी एक विलक्षण लोक है। ईसा मसीह ने कहावतों द्वारा शिक्षा दी, गौतम बुद्ध ने उपदेश देने में लौकिक गाथाओं का प्रयोग किया। अरस्तू जैसे महान तथा सुविख्यात दार्शनिक ने सर्वप्रथम कहावतों का संग्रह किया। इससे यह सिद्ध होता है कि अत्यंत प्राचीन काल से ही कहावतों को सम्मान मिलता रहा है। ज्ञान-सामग्री जहाँ से भी उपलब्ध् हो, सदा ही उपयोगी और सम्मानित होती है। फिर कहावतों में तो पर्वतों की-सी प्राचीनता है, न जाने किस पुरा काल से कहावतें लोगों को विस्मित व आनंदित करती रही हैं। असंख्य व्यक्तियों के अनमोल अनुभवों का भंडार उनमें संचित है। ये उक्तियाँ काल के थपेड़ों से टकराती हुई, अपने समाहित सत्य के बल पर ही सुरक्षित रह सकी हैं और प्राचीन काल से ही गणित के सूत्रों की भाँति व्यक्ति के जीवन का मार्गदर्शन करती हैं।

किंतु, कहावतों का सत्य, वस्तुतः संपूर्ण सत्य नहीं है, वे सत्य के लिए संकेतमात्र का निर्माण करती हैं। जिस प्रकार दर्पण-विशेष की भिन्नता के कारण प्रतिबिंबों में भी भिन्नता आ जाती है, ठीक उसी प्रकार देश, काल और परिस्थितियों की भिन्नता के कारण जीवन-दर्पण में हमें भिन्न-भिन्न रंग दिखाई पड़ते हैं। कहावतों का सत्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो, यह आवश्यक नहीं है। मार्ग-दर्शन के लिए कहावतें श्रेष्ठ साधन का काम देती हैं, फिर भी वे चरम सत्य का पर्याय नहीं होतीं।

साहित्य की दृष्टि से भी कहावतें अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। कहावतें भाषा का अलंकरण हैं। उनके सार्थक प्रयोग से भाषा में सजीवता और स्फूर्ति का संचार होता है। विशेषतः उपन्यास और कहानियों में तो कहावतों और लोकोक्तियों का होना लगभग आवश्यक ही है। प्रेमचंद की रचनाओं में कहावतों और लोकोक्तियों की छँटा सर्वत्र बिखरी हुई दिखाई देती है, इनके प्रयोग से उनका साहित्य सजीव व अधिक प्रभावशाली तथा भाषा में जादू भर गया है। एक अरबी कहावत के अनुसार वाणी में कहावत का वही स्थान है जो भोजन में नमक का है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए भी कहावतों के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। बोलचाल अथवा साहित्य में प्रयुक्त होने वाले बहुत से शब्द समय के साथ धीरे-धीरे अप्रचलित हो जाते हैं किंतु, कहावतों में इस प्रकार के शब्द सुरक्षित रह जाते हैं। कहावतें वे आलोक-दीप हैं जिनकी सहायता से अंधकारपूर्ण अतीत भी जगमगा उठता है। कहावतों का जितना महत्व किसी देश-काल, जाति, जन-समुदाय, प्रदेश

अथवा संपूर्ण राष्ट्र की सभ्यता-संस्कृति तथा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से है, उतना ही उसकी भाषा के अध्ययन की दृष्टि से भी है।

भोजपुरी-भाषा-क्षेत्र के अंतर्गत भारतवर्ष के तीन राज्यों के भू-भाग आते हैं। बिहार प्रांत के चंपारन, सारन, शाहाबाद, राँची और पलामू जिले के अधिकांश क्षेत्रों में भोजपुरी व्यवहार में लायी जाती है। उत्तरप्रदेश के गाजीपुर, बलिया, वाराणसी, मीरजापुर, जौनपुर के अधिकांश पूर्वी भाग, आजमगढ़, गोरखपुर और बस्ती जिले के अधिकांश पूर्वी भाग भोजपुरी भाषा-भाषी हैं। मध्यप्रदेश की सरगुजा-रियासत और जसपुर-राज्य के पूर्वी क्षेत्र में भोजपुरी भाषा का प्रसार है।यद्यपि, जो भोजपुरी चंपारन या सारन जिलों में बोली जाती है, वही शाहाबाद में नहीं बोली जाती। इसी प्रकार, जिस भोजपुरी का व्यवहार बिहार में होता है, उसी का व्यवहार उत्तरप्रदेश के भोजपुरी-भाषी क्षेत्रों में नहीं होता। फिर भी, इन कहावतों की भाषा में कोई खास अंतर नहीं प्रतीत होता। जो थोड़ा-सा अंतर लक्षित होता है, उसे नितांत स्थानीय कहा जाएगा और स्थानीय अंतर से भाषा की प्रकृति में अंतर नहीं माना जा सकता।

भोजपुरी भाषा में साहित्य की प्रायः सभी विधाएँ हैं। इनमें अधिकांश अलिखित होकर भी समृद्ध हैं। लोक की दृष्टि से यह भाषा बहुत धनी है। इस भाषा में लोकगाथा, लोकगीत, कहावत, लोकोक्ति, मुहावरा, पहेली आदि साहित्य भरपूर हैं। गुण और गणना की दृष्टि से भोजपुरी का लोक-साहित्य संसार में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

भारतीय समाज में सदैव ही नारी का विशिष्ट स्थान रहा है। समाज का कोई भी पक्ष हो नारी की उपस्थिति अपेक्षित रही है। कहावतों का संसार भी नारी की व्यंजना से समृद्ध हुआ है। किसी भी समाज में नारी की वास्तविक स्थिति समझने के लिए, कन्या-जन्म के प्रति उस समाज की प्रतिक्रिया सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। पुत्र के कारण वंश-परंपरा चलती है और अंधविश्वासी भारतीयों की दृष्टि में वह अपने मृत पूर्वजों को तारने में भी सहायक होता है। यही कारण है कि पुराकाल से ही भारतीय समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है।

हिंदू-लोकविश्वास के अनुसार कन्या के दर्शन होना एक शुभ शकुन है। किंतु, ऋग्वेद से प्रारंभ करके आधुनिक काल के प्रथम दशक तक का हिंदू-समाज अपने यथार्थ जीवन में कन्या के प्रति विमुख और उदासीन रहा है। प्राचीन साहित्य और लोक-साहित्य में भी ऐसे विभिन्न प्रसंग मिलते हैं, जिनमें कन्या के जन्म को परिवार के लिए दुःखद घटना माना गया है। सायणाचार्य ने भी कहा हैः ''वह ;कन्या जन्म के समय अपने स्वजनों को दुःख देती है, विवाह के धन का हरण करती है, यौवन में अनेक दोषों से कुल को दूषित करती है और इस प्रकार कन्या मता-पिता का हृदय विदीर्ण करने वाली होती है।'' 'बेटी भली न एक' यह कहावती अंश प्रायः उत्तरी भारत में सर्वत्र प्रचलित है।

''बेटी का बाप'' तो एक ऐसा कहावती पदांश है जिसका प्रयोग किसी व्यक्ति के हीन भाव को प्रकट करने के लिए होता है।उत्तर-प्रदेश और बिहार में तो ऐसी प्रथा है कि घर में जब पुत्र का जन्म होता है तो फूल

या काँसा का थाल बजाकर उसका स्वागत किया जाता है किंतु, उसी घर में यदि कन्या का आगमन हो तो उदासी का वातावरण छा जाता है। परिवार में भी उस नारी का विशेष सम्मान होता है, जो पुत्र-प्रसविनी होती है अथवा उसकी संतति से वंश चलने की संभावना रहती है।

जे पेट के आस उहे बिआइल बेटी।

अर्थात्, जिस गर्भ से पुत्र होने की आशा थी, उसी से बेटी उत्पन्न हुई।

बिन मारे बेटी मरे, खाढ़े उफखि बिकाय।

बिन मारे मुदई मरे, ता पर देव सहाय।।

जिसके पुत्री की बचपन में मृत्यु हो जाय, खेत में ईख बिक जाय और बिना मारे दुश्मन की मृत्यु हो जाय, तो समझना चाहिए कि देवता उसके सहायक हैं।

बिप्र टहलुआ चीक धन ओ बेटी के बाप।

एहु से धन ना घटे, त करीं बइन से रार।

ब्राम्हण को नौकर रखने, कसाई का धन लेने और बेटी का पिता बनने से भी यदि धन की हानि नहीं होती है, तो अपने से बड़ी हैसियतवाले व्यक्तियों से झगड़ा मोल लेना चाहिए।

बेटा ए गो कुल राखेला, बेटी दूनो कुल राखेले।

पुत्र पर एक कुल ;पितृ-कुल के सम्मान का दायित्व रहता है और बेटी पर दोनों कुलों ;पितृ-कुल एवं पति का कुल के सम्मान का भार रहता है।

भारतीय इतिहास में ऐसा भी युग था, जब नारी को पुरूषों के समान ही उपनयन, वेदाध्ययन आदि का अधिकार था इतना ही नहीं, ऋग्वेद में तो ऐसी बहुत-सी ऋचाएँ हैं जो स्त्रियों द्वारा निर्मित हैं। उपनिषद्-युग में गार्गी और मैत्रयी जैसी स्त्रियाँ आध्यात्मिक वाद-विवाद में सक्रिय भाग लिया करती थीं। कन्या को अपना वर स्वयं वरण करने की स्वतन्त्रता थी। किंतु, धीरे-धीरे समाज स्त्री के प्रति कठोर होता चला गया और नारी की स्थिति में परिवर्तन होने लगा, क्रमशः वह पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दी गई। बाल-विवाह के कारण अध्ययन भी अत्यंत सीमित हो गया। वेद-पाठ स्त्री के लिए निषिद्ध हो गया। घर ही अब उसका प्रमुख क्षेत्र रह गया, संसार से उसका संबंध विच्छिन्न होने लगा। पुरूष का सामाजिक स्तर उँचा हो गया, स्त्री की स्वतंत्रता जाती रही, जन्म से मरण पर्यन्त उसे रक्षणीय ठहरा दिया गया-

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।

पुत्रो रक्षति वाधर्क्ये, न स्त्री स्वातंत्रयमर्हति।।

अर्थात्, कुमारावस्था में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र स्त्री की रक्षा करता हैऋ स्त्री स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं है।किंतु, इतना होते हुए भी मनुस्मृति में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' जैसी उक्तियाँ हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस युग में नारी के प्रति आदर भाव का अभाव नहीं था।

जहाँ तक भोजपुरी कहावतों का संबंध है, उनमें भोजपुरी नारी की पराधीनता के चित्र ही विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इन कहावतों में, समाज में नारी की पराधीनता को सर्वत्र ही उचित ठहराया गया है।

'खेती बेटी नित्ते गाय, जे ना देखे तेकर जाय।' जो अपनी खेती, बेटी और गाय पर प्रतिदिन निगाह नहीं रखता है, उसकी ये चीजें नष्ट हो जाती हैं।नारी की स्वतंत्रता को कहावती दुनिया में प्रशस्य नहीं ठहराया गया है। ''जिमि स्वतंत्र होई बिगरइ नारी'' की भावना ही कहावतों में बलवती हुई है।

जेकर बेटी अंदर, सेकर भाग सिकंदर।

जिसकी लड़की घर की दहलीज के अंदर रहती है, उसका भाग्य सिकंदर के समान होता है। तात्पर्य है, जिसकी लड़की वश में होती है, वह बड़ा भाग्यशाली होता है।

खरबूजा चाहे धूप, आम चाहे मेह।

नारी चाहे जोर, बालक चाहे नेह।।

खरबूजा धूप चाहता है, आम पानी चाहता है, स्त्री शक्ति चाहती है और बालक स्नेह चाहते हैं। यहाँ स्त्री के संदर्भ में शक्ति का अर्थ उस शक्तिशाली पुरूष से है, जिसके अधीन नारी रह सके।

'ससुर भसुर के डर नहिं, जेकर डर से घर नहिं।'ससुर-भसुर का डर नहीं है और जिसका पति का डर है, वह घर ही नहीं है।

उक्त कहावतों का अध्ययन करने के उपरांत एक प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि क्या नियंत्रण में रखे जाने पर ही नारी के शील और चरित्र की रक्षा संभव है? क्यों यह संभव नहीं कि अत्यधिक नियंत्रण के प्रतिक्रिया स्वरूप ही नारी के मन में श्रृंखलाओं को तोड़ डालने की इच्छा होने लगती है।अधिकतर कहावतों में नारी समस्या की जड़ के रूप में ही प्रस्तुत की गई है।'जोरू जमीन जर, तीनू झगरा के जर।' स्त्री, जमीन और संपति, ये तीनों झगड़े की जड़ होते हैं। स्त्री के समूचे अस्तित्त्व को इस दृष्टि से देखना कितना उचित है? इस दृष्टिकोण के लिए क्या पूरा समाज जिम्मेदार नहीं है?'जहाँ गइलिन डाढ़ों रानी, उहवाँ पड़ल पाथर पानी।'कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जो सर्वत्र उपद्रव ही करती चलती हैं। उपरोक्त कहावत में भी नारी समस्या की मूल के रूप में ही अंकित की गई है।

जे मौगी सांई के न भेल से गोसांई के होत?

जो स्त्री अपने स्वामी की नहीं हुई, वह क्या अपने प्रेमी की होगी? तात्पर्य यह है, कुलटा स्त्रियाँ किसी की भी नहीं होतीं हैं।'वा तिरिया संग बैठ न भाई, जा को जगत कहे हरजाई।' जिस स्त्री को दुनिया व्यभिचारिणी कहे, उस के पास नहीं बैठना चाहिए। कुलटा स्त्रियों से यथेष्ट दूरी रखने में ही भलाई है, इस तरह के परामर्श भी कहावतों में मिलते हैं।'जब बिगड़ी त सुघरी फुहरी का बिगड़ी।'अर्थात्, रूपवती स्त्रियों के ही चरित्र भ्रष्ट होने की अधिक संभावना रहती है, फूहड़ स्त्रियों को पूछेगा ही कौन? 'इयार के न भतार के।' न तो प्रेमी के प्रति वफादार है और न अपने पति के प्रति। तात्पर्य है, कुलटा स्त्रियाँ किसी की भी नहीं होतीं।

औरत के जात केरा के पात।

औरत केले के पत्ते के समान होती है उसका मन बहुत चंचल होता है, वह केले के पत्ते के समान सदैव डोलता रहती है। अतः उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। माता नारी-जीवन का सार्थक और महान रूप है। वह संतान के लिए एक ईश्वरीय देन है। एक प्रसिद्ध सूक्ति में कहा गया हैः 'हर जगह नहीं रह सकते थे भगवान, इसलिए उन्होंने माता बनाई।' माता निष्काम भाव से संतानों का पालन-पोषण करती है। इसलिए उपनिषदों में माता को देवता कहा गया है। कहावतों में भी माता की ममता और करूणा को दुर्लभ वस्तु माना गया है।

माई के मनवा गाई अइसन, पूत के मनवाँ कसाई अइसन।

माँ का हृदय गाय की तरह और सरल-सीधा होता है और पुत्र का मन कसाई और क्रूर की तरह होता है। इस कहावत में यह संकेत किया गया है कि माता सभी परिस्थितियों में करूणामयी ही रहती है, भले पुत्र कसाई-सा ;क्रूर क्यों न हो जाए।

मग्घा बरसे, माता परसे, भूखा न तरसे।

मघा नक्षत्र की वर्षा और माता के स्पर्श से सभी क्षुध और ताप समाप्त हो जाते है। संतान के लिए माता का स्नेहिल स्पर्श ही सब कुछ है।

माई निहारे ठठरी, जोइया निहारे मोटरी।

अर्थात्, परदेशी पुत्र के घर लौटने पर माँ पुत्र का शरीर देखती है, और पत्नी गठरी। पुत्र जब परदेश से घर लौटता है तो माता उसके थके हुए शरीर को देखकर भाव-विह्वल हो रही है, और पत्नी की नजर उसके द्वारा कमाकर लाए हुए धन पर टिकी है।'जइसन माई, ओइसन धीया, जइसन काकर ओइसन बीया।' जैसी माँ होती है, उसकी पुत्री ;संतति भी वैसी ही होती हैऋ जैसी ककड़ी होती है, वैसा उसका बीज होता है।पारिवारिक जीवन में एक तरफ माँ ईश्वर का वरदान है तो दूसरी तरफ सौतेली माँ प्रायः अभिशाप सिद्ध हुई है।'गोंयड़ा

के खेती, सिरवा के साँप, मैभा कारन बैरी बाप।' गाँव के समीप की खेती, बिछावन के उपर का साँप और सौतेली माँ के कारण वैरी बने हुए बाप-इन तीनों को दुःखद कहा गया है।

बहू के लिए सास माता-सी होती है। पारिवारिक जीवन के सुख-शान्ति की दृष्टि से सास-बहू का परस्पर प्रेम अत्यंत आवश्यक है। किंतु, कभी-कभी यह प्रेम-भाव वैर में बदल जाता है। सास-बहू का यह आपसी तनाव पारिवारिक क्लेष का कारण बन जाता है। सास अपने बेटे पर और बहू अपने पति पर अधिकाधिक अधिकार जमाने की चेष्टा में अनायास ही एक-दूसरे की प्रतिद्वन्दी बन बैठती हैं। कहावत-जगत् में इन संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है।

सासुओ रानी बहुरियो रानी, कवन भरे कुआँ से पानी।

सास और पतोहू, दोनों रानी हैं कुएँ से पानी कौन भरे? कहने का अर्थ है, सास और बहू दोनों रानी बन जायँ, तो घर-गृहस्थी का काम कौन करे? 'सास पतोह में झगरा भेल, सूप डगरा बखरा भेल।' सास-पतोहू में झगड़ा हुआ, तो सूप और डगरे तक का बँटवारा हो गया। तात्पर्य यह है, सास और बहू में ;निकट के संबंधियों में यदि झगड़ा हो जाय, तो छोटी-छोटी वस्तुओं का भी बाँट-बखरा आरंभ हो जाता है। 'सासु घरूआरी पतोहू दरबारी।'सास तो घर के काम-काज में जुटी हुई है और पतोहू दरबार सजा कर बैठी है। जब बहू सामान्य शिष्टाचार एवं कर्तव्य-ज्ञान से शून्य हो और अशिष्ट आचरण करती हो, उस समय उपरोक्त कहावत का प्रयोग करते हैं।

सासु पतोहिया एके होइहें, भाभा कुऋन घर चलि जइहें।

सास-पतोह आखिर एक होंगी, लेकिन चुगली करने वाली स्त्रियाँ अपने-अपने घर चली जाएँगी। तात्पर्य है, अपने से कितना भी विरोध् क्यों न हो जाय, किंतु एक न एक दिन अपनापन पुनः स्थापित हो ही जाता है। इस बीच गैरों ;चुगलखोरोंद्ध की पहचान अच्छी तरह हो जाती है।

सास ना नंद, घर अपने अनंद।

सास-ननद तो हैं नहीं इसलिए बहू घर में अकेली आनंदपूर्वक है। जिस बहू के साथ सास-ननदें आदि नहीं रहतीं, वह मनमाना काम करती तथा स्वच्छन्द हो आनंद मनाती है।

सास के साथ ननद भी बहू के लिए बंधन और बाध उपस्थित करने वाली ही समझी जाती है। भोजपुरी कहावतों में ननद और भाभी के इस रिश्ते को भी उकेरा गया है।'छोटी चुकी ननदी जहर के पुड़िया।'ननद देखने में तो अत्यंत छोटी है, लेकिन है जहर की पुड़िया। उम्र अथवा कद का छोटा व्यक्ति यदि चुभने वाली बातें करे, तो उस समय भी उक्त कहावत कहते हैं।'ननदो के ननद होलीं। ननद की भी ननद होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि शासक भी किसी के द्वारा शासित होता है। 'मूअल सौत सतावेले, काठे के

ननद बिरावेले।'मृत सौत भी सताती है और काठ की ननद भी ;भाभी को मुँह चिढ़ाती है। उक्त कहावत में भी ननद और भाभी के ईर्ष्यापूर्ण संबंध की झलक मिलती है।

विवाह के बाद लड़की बहू बनकर पति के घर में प्रवेश करती है। गृहस्थी के लिए घर में पत्नी का होना आवश्यक है। ऐसा कहा जाता है कि पत्नी के बिना पुरूष अपूर्ण रहता है। किंतु, गृहणी के अभाव में घर वस्तुतः घर होता ही नहीं है। कभी-कभी संयुक्त परिवार में बहू के आगमन से नई स्थिति भी पैदा हो जाती है। कहावतों में पत्नी या बहू की स्थिति और विशिष्ट आचरण पर भी विचार किया गया है।'बिन घरनी घर भूत के डेरा।'अर्थात्, बिना बहू या पत्नी के घर भूत के निवासस्थान-सा लगता है। 'घरनिए घर, हरवाहे हर।' घरनी से घर की शोभा है और हलवाहे से हल की। तात्पर्य है, बिना घरनी के घर नहीं चल सकता और बिना हलवाहे की खेती नहीं हो सकती।

'रुसल बहुरिया, उकटेरल आग, दूनो ठहरल बड़ बा भाग।'

रूठी हुई वधू और उलटाई-पलटाई हुई आग-ये दोनों ठहर जाएँ, तो बड़े भाग्य की बात है।'जोरू साथ के रूपया हाथ के।'साथ अनुकूल रहने वाली पत्नी ही सच्ची पत्नी है और हाथ में रहने वाला रूपया ही असली रूपया है।'घर में आइल जोय, टेढ़ी पगिया सीधी होय।'

उपरोक्त कहावत के अनुसार जब घर में स्त्री आती है तो टेढ़ी पगड़ी सीधी हो जाती है। अर्थात्, विवाह के बाद पुरूषों की हेठी कम हो जाती है इन कहावतों में पुरूष और स्त्री का गृहस्थाश्रम में प्रवेश पुरूषार्थो की सिद्धि के लिए उनका संयुक्त जीवन और विशेष रूप से स्त्री के महत्त्व को चित्रित किया गया है।

भोजपुर क्षेत्र में बहुपत्नीत्व-प्रथा हाल तक प्रचलित रही है। यह प्रथा प्रायः धनी-वर्ग में प्रचलित थी। इस बहुपत्नीत्व-प्रथा से संयुक्त परिवार की एकता को भी धूक्का पहुँचा है। कभी-कभी इस प्रथा के कारण दाम्पत्य-जीवन कुण्ठाग्रस्त और दुःखद भी हो जाता है। कहावतों में भी बहुपत्नी-प्रथा के नकारात्मक परिणामों की ओर संकेत किया गया है।'तीन बैल, दूइगो मेहरी, गइल घर ओ खेती ओकरी।'जिसके पास तीन बैल और दो पत्नियाँ हैं, उसकी खेती और घर समाप्तप्राय हैं।'सौत' बहुपत्नी-प्रथा की देन है। वह परिवार में पति के प्रेम और संपति की द्वितीय अधिकारिणी के रूप में प्रवेश करती है। अतः सौतों की पारस्परिक ईष्र्या कुछ स्वाभाविक भी है। 'सौतिया डाह' तो जगत्-प्रसिद्ध है।'सौति के रिसि कठौति काढ़ल।' अर्थात्, सौत पर क्रोध् प्रकट करने के लिए कठौत ;काष्ठ का बना हुआ एक बर्तन पटक दिया।'मोर सौतिन खइलसि दही, मोरा से कइसे जाई रही।' मेरी सौत ने तो दही खाया है। इसलिए मुझसे बिना दही खाये कैसे रहा जाएगा। उक्त कहावत से तो यही स्पष्ट हो रहा है कि सौत परस्पर ईर्ष्यावश प्रायः जान-बूझकर झगड़ा मोल लेती है।'सौतिनी न मितनी, गोतिनी न अपनी।' सौत कभी मित्र नहीं हो सकती तथा गोतिनी कभी अपनी नहीं हो सकती।

'सौतिन के बच्चा के जान फेंका-फेंकी में।' स्त्रियाँ सौत के बच्चे का आदर नहीं करतीं हैं। सौत के बच्चे के कारण पति-पत्नी में अनबन स्वाभाविक रूप से रहता है। इस खींचातानी में बच्चे की जान अटकी

रहती है। कभी-कभी तो बच्चे के प्राण पर भी संकट उपस्थित हो जाता है।'सौतिन काठो के ना अच्छी।'सौत काठ की हो, तो भी वह अच्छी नहीं है। अर्थात्, किसी भी स्थिति में सौत स्वीकार्य नहीं है।'सौतिन के खुसामदे सासुरे बास।' सौत की खुशामद करने पर ही ससुराल में जीवन-निर्वाह संभव होता है।

हिंदू-परिवार में 'भाभी' एक विशिष्ट संबंध का निर्वाह करती है। परिवार में बहू अपने पति के बड़े भाई के प्रति विमुखता बरतती है, किंतु पति के छोटे भाई ;देवर और पति की छोटी बहनों ;ननद से हँसी-मजाक का संबंध रखती है।'अबरा के मेहर, गाँव भर के भौजाई।' गरीब ;कमजोर की पत्नी पूरे गाँव की भाभी होती है अर्थात्, सभी उससे हँसी-मजाक करते हैं। इसलिए पत्नी के सम्मान को बनाए रखने के लिए पति में पुरूषोचित गुण आवश्यक है। कमजोर और लाचार पुरूष की पत्नी सभी के मनोरंजन का साधन बन जाती है। 'भरल झोरी जोइया के, छूँछ बात भउजइया के।' देवर भरी गठरी तो पत्नी को देता है और भाभी को छूँछी बातें देता है।

भोजपुरी कहावतों में नारी के संबंध में जिस तरह की धारणा लक्षित होती है, उनसे प्रायः नारी के प्रति किसी उँची भावना का पता नहीं चलता। कदाचिद्, स्त्री के माता-रूप को छोड़कर अन्य सभी भूमिकाओं में उसे हेय दृष्टि से देखा गया है। 'औरत की बुद्धि घुटने में' जैसी कहावतों के द्वारा स्त्री की छवि को हीन और हास्यास्पद बनाकर प्रस्तुत किया गया। कन्या अपने जन्म लेने के समय से ही तिरस्कार का पात्र समझी जाने लगती है। पुत्र वंश-परंपरा का वाहक है- इस सोच के कारण पुत्री की अपेक्षा पुत्र को असाधरण महत्व दिया जाने लगा। किंतु, पुत्र की दुहाई देने वाले यह बात क्यों भूल जाते हैं कि पुत्र को जन्म देने वाली नारी ही तो है। सामाजिक बुराइयों ने कन्या के जीवन में ग्रहण का काम किया। सिर्फ भोजपुरी-भाषी क्षेत्र ही नहीं अपितु, पुरे भारतवर्ष में आज स्त्री अपने अस्तीत्व के लिए, अपने होने के लिए संघर्ष कर रही है।

अर्चना उपाध्याय

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग

श्याम लाल कॉलेज, सांध्य

दिल्ली विश्वविद्यालय